ओ३म्

॥ योग सार ॥

योगदर्शन के सुबोध अर्थ सहित

॥ मूलसूत्र ॥

निर्माणकर्ता:—

स्वामी ओमानन्द

रायसा० डा० श्यामस्वरूप जी सत्यव्रत,

मित्रा प्रेस बरेली।

आर्यमार्तण्ड की सम्मति

* पातंजल योग प्रदीप *

(लेखक—श्री स्वामी ओमानन्द जी)

इस ग्रन्थ के अभी केवल ५ अंक ही प्रकाशित हुये हैं। प्रथम ७२ पृष्ठों में लेखक ने 'षड्-दर्शन समन्वय' किया है। अर्थात् छहों दर्शनों की एकाकार संगति लगाई है। छहों दर्शनों के सिद्धान्तों और मन्तव्यों को बड़ी उत्तम रीति से पृथक २ बतला कर उनकी एक वाक्यता किस प्रकार होती है इसके लिये अच्छा यत्न किया है। योगदर्शन का प्रारम्भ करने के पूर्व सांख्य और योगदर्शन के तत्त्वों को भली प्रकार खोल दिया है। सांख्यकार कपिल को निरीश्वरवादी न मान कर सेश्वरवादी सिद्ध किया है। अन्तरयोगदर्शन का परिचय देकर उस अंक से योग प्रदीप का वास्तविक ग्रंन्थ प्रारम्भ किया है। उससे ५ वें अंक तक योग्य ग्रन्थकार ने अभी समाधि पाद के ४० सूत्रों का ही विवरण किया है। प्रत्येक सूत्र का शब्दार्थ, अन्वयार्थ देकर व्याख्या में अनेक भाष्यकारों व वृत्तियों से योग सम्बन्धी ज्ञातव्य अनेक बातों को स्पष्ट किया है। योग सम्बन्धी तत्त्वों पर प्रकाश डालने के लिये प्राचीन उपनिषदों के अनेक उद्धरणों का समयोचित और स्थानोचित सकलन कर उनको भी भाषा में समझाया है। यह तो ग्रंथ की शैली है। यह प्रयत्न भी बड़ा उत्तम है। स्वामी जी इस ग्रंथ को पूर्ण कर देंगे तो यह एक संग्रह करने योग्य योग-विषयक उत्तम ग्रन्थ हो जावेगा।

जयदेव शर्मा विद्यालंकार
मीमांसातीर्थ, चतुर्वेद भाष्यकार, अजमेर

पाठकगण ! कृपया निम्न शुद्धिपत्र अनुसार पुस्तक को शोधकर पढ़ें --

पृष्ट	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३	६	योगा	याग
५	३	१६	१३
५	१०	वैरात्वम्	वैराग्यम्
१०	१६	ऋतम्बरा	ऋतम्भरा
१०	२०	अथ	अर्थ
१२	११	क	के
१४	१८	माव	भाव
१५	४	ख्यतिः	ख्यातेः
१५	१४	सकेत	संकेत
१६	१८	सम्बोथः	सम्बोधः
१९	१७	लाकः	लोकः
१९	१७	तज्जपा	तज्जया
२१	१०	अभ्यास	अध्यास
२२	१७	लाक	लोक

२३	५	नामि	नाभि
२५	२०	मावः	भावः
३१	६	मि	भि
३२	४	मेधेः	मेघः
३२	८	धर्मवेघ	धर्ममेघ
३२	९	अभिनिमेष	अभिनिवेष
३५	५	कण	कर्ण





ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

अर्थ—वह (परमात्मा) पूर्ण है और यह (विश्व रूप उसकी महिमा) पूर्ण है, क्योंकि पूर्ण से पूर्ण उत्पन्न होता है, पूर्ण से पूर्ण निकाल डालने से पूर्ण ही शेष रहता है ।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखमाप्नुयात् ॥ १ ॥
सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु ।
सर्वः सर्वमवाप्नोतु सर्वः सर्वत्र नंदतु ॥ २ ॥
दुर्जनः सज्जनो भूयात् सज्जनः शांतिमाप्नुयात् ।
शांतो मुच्येत बंधेभ्यो मुक्तश्चान्यान् विमोचयेत् ॥ ३ ॥
क्षमेऽहं सर्वान् वै जीवान् ते चक्षाम्यन्तु मां सदा ।
मैत्री स्यात् सर्वभूतेषु न मे द्वेषोऽस्ति केनचित् ॥ ४ ॥
न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।
कामये दुःख तप्तानां प्राणिनामार्त्तिनाशनम् ॥ ५ ॥

स्वस्तिः प्रजाभ्यः परिपालयन्ताम्,
न्यायेन मार्गेण महीं महीशाः ।
गोब्राह्मणेभ्यः शुभमस्तु नित्यम्,
लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु ॥ ६ ॥

अर्थ—सब सुखी हों, सब आरोग्य हों, सबका कल्याण हो, कोई दुःखी न हो ॥१॥ सब दुःखों से पार हों, सब कल्याण को देखें, सबको सब कुछ प्राप्त हो, सब सभी जगह आनन्दित रहें ॥२॥ दुर्जन सज्जन होजायँ, सज्जन शांति प्राप्त करें, शान्त बन्धन से मुक्त हों, और मुक्त दूसरों को मुक्त करें ॥३॥ मैं सब जीवों को क्षमा करता हूँ, सब जीव मुझे क्षमा करें, सब भूतों से मेरी मित्रता हो, किसी से द्वेष न हो ॥४॥ न मैं कामना करता हूं राज्य की, न स्वर्ग की, न मोक्ष की, कामना करता हूं कि दुःख से पीड़ित प्राणियों का दुःख नष्ट हो ॥५॥ प्रजा का कल्याण हो, राजा लोग न्याय से उनको पालें, गौ (आदि सर्व उपकारी पशु) और ब्रह्मनिष्ठ (प्राणी मात्र के हित चाहने वाले) विद्वानों का कल्याण हो। सब लोग सुखी रहें ॥६॥

ॐ द्यौः शान्ति रन्तरिक्षं॰ शान्ति पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्ति। वनस्पतयः शान्ति विश्वेदेवा शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वं॰शान्तिः शान्तिरेव शान्ति सा मा शान्तिरेधि।

(यजु० ३६-३६)

अर्थ—द्यु लोक शान्ति दे, अन्तरिक्ष शान्ति दे, पृथ्वीलोक शान्ति दे, जल. प्राण शान्ति देवें, रोगनाशक औषधियां शान्ति देवें, भोज्य वनस्पतियां शान्ति देवें। सबके सब देव शान्तिदायक होवें, ज्ञान शान्ति देवे, सभी कुछ शान्ति ही देवें, शान्ति भी सचमुच शान्ति ही होवे, वह ऐसी शान्ति मुझे प्राप्त होवे।

❀ ॐ ❀

※ श्री पातञ्जल योग दर्शनम् ※

समाधि पादः।

अथ योगानुशासनम् ॥ १ ॥

अब योग की शिक्षा देने वाले ग्रन्थ को आरम्भ करते हैं।

योगश्चित्तवृत्ति निरोधः ॥ २ ॥

चित्त की वृत्तियों का रोकना योग है।

तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् ॥ ३ ॥

तब (चित्त की वृत्तियों के रुक जाने पर) द्रष्टा की स्वरूप में अवस्थिति होती है।

वृत्तिसारूप्यमितरत्र ॥ ४ ॥

दूसरी अर्थात् निरोध से भिन्न व्युत्थान अवस्था में द्रष्टा की वृत्तियों के समान रूपता होती है। अर्थात् द्रष्टा वृत्तियों के समान रूप वाला प्रतीत होता है।

वृत्तयः पंचतय्यः क्लिष्टा क्लिष्टाः ॥ ५ ॥

वृत्तियें पांच प्रकार की होती हैं, क्लिष्ट अर्थात राग-द्वेषादि क्लेशों की हेतु, और अक्लिष्ट अर्थात् राग द्वेषादि क्लेशों की नाश करने वाली।

प्रमाण विपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः ॥ ६ ॥

प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा, स्मृति ये पांच प्रकार की वृत्तिया हैं (जिनका लक्षण अगले सूत्रों में बतलायेंगे)

प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि ॥ ७ ॥

प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम भेद से तीन प्रकार की प्रमाण वृत्ति हैं।

विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम् ॥ ८ ॥

विपर्यय मिथ्या-ज्ञान है जो उस पदार्थ के रूप में प्रतिष्ठित नहीं है।

शब्द ज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः ॥ ९ ॥

शब्द से उत्पन्न जो ज्ञान, उसके पीछे चलने का जिसका स्वभाव हो और जो वस्तु की सत्ता की अपेक्षा न रखता हो अर्थात् जो निर्विषय हो, इस प्रकार का ज्ञान विकल्प कहलाता है।

अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्रा ॥ १० ॥

(जाग्रत तथा स्वप्नावस्था की वृत्तियों के) अभाव की प्रतीति को आश्रय करने वाली वृत्ति निद्रा है।

अनुभूतविषयासंप्रमोषः स्मृति ॥ ११ ॥

असुभव किये हुये (किसी) विषय का (फिर चित्त में) आरोह-पूवक उससे अधिक नहीं किन्तु तन्मात्र-विषयक ज्ञान होना स्मृति है।

अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः ॥ १२ ॥

अभ्यास और वैराग्य से उन वृत्तियों का निरोध होता है।

तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः ॥ १३ ॥

उनमें (दोनों अभ्यास और वैराग्य) से चित्त की स्थिति के विषय में यत्न करना अभ्यास है।

स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढभूमिः ॥ १४ ॥

किन्तु वह (पूर्वोक्त अभ्यास) दीर्घ काल पर्य्यन्त निरन्तर व्यवधान-रहित ठीक २ श्रद्धा, वीर्य भक्ति-पूर्वक अनुष्ठान किया हुआ दृढ अवस्था वाला होजाता है।

दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम् ॥ १५ ॥

दृष्ट और आनुश्रविक विषयों में जिसको तृष्णा नहीं रहती है उसका वैराग्य वशीकार नाम वाला अर्थात् अपर वैराग्य है।

तत्परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम ॥ १६ ॥

विवेक ख्याति द्वारा गुणों से तृष्ण-रहित हो जाना पर वैराग्य है।

वितर्कविचाराऽनन्दाऽस्मितारूपाऽनुगमात् संप्रज्ञातः ॥ १७ ॥

वितर्क विचार, आनन्द और अस्मिता नामक स्वरूपों के सम्बन्ध से जो चित्त की वृत्तियों का निरोध है वह सम्प्रज्ञात-समाधि कहलाता है अर्थात् वितर्क के सम्बन्ध से जो समाधि होती है उसका नाम वितर्कानुगत, विचार के सम्बन्ध से विचारानुगत आनन्द के सम्बन्ध से आनन्दानुगत और अस्मिता के सम्बन्ध से होने वाली समाधि का नाम अस्मितानुगत सम्प्रज्ञात-समाधि है।

विरामप्रत्ययाभ्यास पूर्वः संस्कारशेषोऽन्यः ॥ १८ ॥

सर्व वृत्तियों के निरोध का कारण जो पर वैराग्य है उसके पुनः २ अनुष्ठान-रूप अभ्यास से जो उसके संस्कार शेष रह जाते हैं वह असम्प्रज्ञात-समाधि है।

भवप्रत्ययो विदेह प्रकृतिलयानाम् ॥ १९ ॥

विदेह और प्रकृतिलयों को भव प्रत्यय नामक असम्प्रज्ञात-समाधि की सिद्धि प्राप्त होती है।

श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम् ॥ २० ॥

दूसरे योगी जो विदेह और प्रकृतिलय नहीं हैं उनको श्रद्धा, वीर्य, स्मृति समाधि और प्रज्ञा-पूर्वक 'उपाय प्रत्यय' नामक असम्प्रज्ञात समाधि प्राप्त होती है।

तीव्रसंवेगानामासन्नः ॥ २१ ॥

तीव्र सम्वेग अधिमात्र उपाय वाले योगियों को समाधि लाभ शीघ्रतम होता है।

मृदुमध्याधिमात्रत्वात्ततोऽपि विशेषः ॥ २२ ॥

मृदु, मध्य, अधिमात्र ये तीन भेद होने से मृदु तीव्र सम्वेग वालों और मध्य तीव्र सम्वेग वालों के समाधि लाभ से भी अधिमात्र तीव्र सम्वेग वालों को समाधि लाभ में विशेषता है।

ईश्वर प्रणिधानाद्वा ॥ २३ ॥

अथवा ईश्वर प्राणिधान से शीघ्रतम समाधि लाभ होता है।

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः ॥ २४ ॥

क्लेश, कर्म, कर्मों के फल और वासनाओं से असम्बद्ध, अन्य पुरुषों से विशेष (विभिन्न उत्कृष्ट) चेतन ईश्वर है।

तत्र निरतिशयं सर्वज्ञ बीजम् ॥ २५ ॥

उस पूर्वोक्त ईश्वर में सर्वज्ञता का बीज अतिशय (बढ़ती) रहित है।

पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ॥ २६ ॥

वह ईश्वर पूर्व उत्पन्न हुये ब्रह्मादिकों का भी गुरु हैं क्योंकि वह काल से परिच्छिन्न (परिमित) नहीं है।

तस्य वाचकः प्रणवः ॥ २७ ॥

उस ईश्वर का बोधक शब्द ओ३म् है।

तज्जपस्तदर्थभावनम् ॥ २८ ॥

उस ओ३म् शब्द का जप और उसके अर्थभूत ईश्वर का ध्यान करना (पुनः पुनः चिन्तन करना) ईश्वर-प्रणिधान है।

ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च ॥ २९ ॥

उस ईश्वर प्रणिधान से प्रत्यक्चेतना का ज्ञान (जीवात्मा का साक्षात्कार) भी होता है और अन्तरायों (विघ्नों) का अभाव होता है।

व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादाऽऽलस्याऽविरतिभ्रान्तिदर्शनाऽलब्धभूमिकत्वाऽनवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः ॥ ३०

व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्ति-दर्शन, अलब्ध-भूमिकत्व, अनवस्थितत्त्व ये चित्त के नौं विक्षेप (योग के) विघ्न हैं।

दुःख दौर्मनस्याङ्गमेजयत्वश्वासप्रश्वासाः विक्षेपसहभुवः ॥ ३१ ॥

दुःख, दौर्मनस्य, अङ्गमेजयत्व, श्वास-प्रश्वास, ये विक्षेपों के साथ होने वाले हैं अर्थात् उनके होने से यह पांच प्रतिबन्धक भी उपस्थित हो जाते हैं।

तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः ॥ ३२ ॥

उन पूर्वोक्त विक्षेपों तथा उपविक्षेपों को दूर करने के लिये एक तत्त्व का अभ्यास करना चाहिये ।

मैत्री करुण मुदितोपेक्षाणां सुखदुःख पुण्यापुण्य विषयाणां भावनातश्चित्त प्रसादनम् ॥ ३३ ॥

सुखी, दुखी, पुण्यात्मा और पापियों के विषय में (यथा क्रम) मित्रता, दया, हर्ष और उपेक्षा की भावना के अनुष्ठान से चित्त प्रसन्न और निर्मल होता है ।

प्रच्छर्दन विधारणाभ्यां वा प्राणस्य ॥ ३४ ॥

अथवा कोष्ट स्थित (कोठा=उदर में रहने वाली) वायु को नासिका पुट द्वारा (प्रयत्न-विशेष से) बाहर फेकने और बाहर रोकने दोनों से मन की स्थिति को सम्पादन करे ।

विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थिति निबन्धनी ॥ ३५ ॥

अथवा (गंध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द) विषयों वाली प्रवृत्ति उत्पन्न हुई मन को स्थिति को बांधने वाली होती है ।

विशोका वा ज्योतिष्मती ॥ ३६ ॥

अथवा शोक रहित प्रकाश वाली प्रवृत्ति उत्पन्न हुई मन की स्थिति को बांधने वाली होती है ।

वीतराग विषयं वा चित्तम् ॥ ३७ ॥

अथवा राग रहित योगी गण के चित्त विषयक संयम करने वाला (आलम्बन करने वाला) चित्त मन की स्थिति को बांधने वाला होता है ।

स्वप्ननिद्राज्ञानालम्बनं वा ॥ ३८ ॥

अथवा स्वप्न ज्ञान और निद्रा ज्ञान को आश्रय करने वाला चित्त मन की स्थिति को बांधने वाला होता है।

यथाभिमतध्यानाद्वा ॥ ३९ ॥

अथवा (शास्त्रीय मर्यादानुसार) जो जिसको अभिमत (इष्ट) हो, उसके ध्यान से मन की स्थिति बध जाती है।

परमाणुपरममहत्त्वान्तोऽस्य वशीकारः ॥ ४० ॥

पूर्वोक्त उपायों से स्थित हुये चित्त का सूक्ष्म पदार्थों में परमाणु पर्यन्त, और महान पदार्थों में परम-महान् (आकाश) पर्यन्त वशीकार होजाता है।

क्षीणवृत्तेरभिजातस्येव मणेर्ग्रहीतृग्रहणग्राह्येषु तत्स्थतदञ्जनता समापत्तिः ॥ ४१ ॥

राजस् तामस् वृत्ति रहित स्वच्छ चित्त की उत्तम जातीय (अति-निर्मल) मणि के समान ग्रहीता (अस्मिता) ग्रहण, (इन्द्रियें) ग्राह्य (स्थूल तथा सूक्ष्म विषयों) में स्थित होकर उनके तन्मय हो जाना (उनके स्वरूप को प्राप्त होजाना) समापत्ति (तद्रूप होना) है।

तत्र शब्दार्थज्ञानविकल्पैः संकीर्णा सवितर्का समापत्तिः ॥ ४२ ॥

उन समापत्तियों में से शब्द, अर्थ और ज्ञान के विकल्पों (भेदों) से मिली हुई (अर्थात् इन तीनों भिन्न २ पदार्थों का अभेद रूप से जिसमें भान होता है) सवितर्क समापत्ति है।

स्मृतिपरिशुद्धौ स्वरूपशून्येवार्थमात्रनिर्भासा निर्वितर्का ॥ ४३ ॥

स्मृति के शुद्ध होजाने पर (अर्थात् आगम अनुमान के कारण भूत शब्द संकेत-स्मरण के निवृत्त होने से) अर्थ मात्र से भासने

वाली अपने (ग्रहणाकार ज्ञानात्मक) रूप से रहित (चित्त वृत्ति) निर्वितर्क समापत्ति है।

एतयैव सविचारा निर्विचारा च सूक्ष्म विषया व्याख्याता ॥ ४४ ॥

इस सवितर्क और निर्वितर्क समापति के निरुपण से ही सवि-चार और निर्विचार समापत्तियां सूक्ष्म विषय में व्याख्यान की हुई समझनी चाहिये।

सूक्ष्म विषयत्वं चालिङ्गपर्यवसानम् ॥ ४५ ॥

सूक्ष्म विषयता अलिङ्ग (प्रकृति) पर्यन्त है।

ता एव सबीजः समाधिः ॥ ४६ ॥

ये पूर्वोक्त चारों समापत्तियां ही सजीव समाधि कहलाती हैं।

निर्विचार वैशारद्येऽध्यात्मप्रसादः ॥ ४७ ॥

निर्विचार समाधि की वैशारद्य (प्रवीणता) होने पर अध्यात्म (प्रज्ञा) की निर्मलता होती है।

ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा ॥ ४८ ॥

अध्यात्मप्रसाद के लाभ होने पर जो प्रज्ञा (बुद्धि) उत्पन्न होती है उसका नाम ऋतम्भरा प्रज्ञा (सच्चाई को धारण करने वाली अविद्यादि से रहित बुद्धि) है।

श्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यामन्यविषया विशेषार्थत्वात् ॥ ४९ ॥

आगम और अनुमान की प्रज्ञा से ऋतम्भरा प्रज्ञा का विषय अलग है विशेष रूप से अर्थ का साक्षात्कार कराने से।

तज्जः संस्कारोऽन्यसंस्कारप्रतिबन्धी ॥ ५० ॥

उस ऋतम्भरा प्रज्ञा से उत्पन्न होने वाला संस्कार अन्य सब व्युत्थान के संस्कारों का बाधक (रोकने वाला) होता है।

तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीजः समाधिः ॥ ५१ ॥

(परवैराग्य द्वारा) उस ऋतम्भरा प्रज्ञाजन्य संस्कार के भी निरोध होजाने पर (पुरातन नूतन) सब संस्कारों के निरोध होजाने से निर्बीज समाधि होती है।

* इति श्रीं पातञ्जले योग शास्त्रे समाधि निर्देशो नाम प्रथमः पादः *

—o:❀:o—

अथ साधन पादः ।

तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः ॥ १ ॥

तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान क्रिया योग है।

समाधिभावनार्थः क्लेशतनूकरणार्थश्च ॥ २ ॥

समाधि की भावना के लिये और क्लेशों के तनू करने के लिये क्रिया योग है।

अविद्याऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः ॥ ३ ॥

अविद्या, अस्मिता, राग द्वेष और अभिनिवेश क्लेष हैं। (यह पांचों बाधना-रूप पीड़ा को उत्पन्न करते हैं और चित्त में वर्तमान रहते हुये संस्कार-रूप गुणों के परिमाण को दृढ़ करते हैं, इस लिये क्लेश नाम से कहे गये हैं, यह पांचों विपर्यय अर्थात् मिथ्या ज्ञान ही हैं क्योंकि उन सबका कारण अविद्या ही है) ।

अविद्याक्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम् ॥ ४ ॥

प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न और उदार अवस्था वाले अस्मिता आदि क्लेशों का अविद्या क्षेत्र है।

अनित्याशुचिदुःखानात्मसुनित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या ॥५॥

अनित्य में नित्य, अपवित्र में पवित्र, दुःख में सुख और अनात्मा में आत्मा का ज्ञान अविद्या है।

दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवास्मिता ॥ ६ ॥

द्रष्टृ शक्ति और दर्शन शक्ति का एक स्वरूप जैसा भान होना अस्मिता (क्लेश) है।

सुखानुशयी रागः ॥ ७ ॥

सुख-भोग के पीछे जो चित्त में उसके भोग की इच्छा रहती हैं वह राग है।

दुःखानुशयी द्वेषः ॥ ८ ॥

दुख के अनुभव के पीछे जो घृणा की वासना चित्त में रहती है उसको द्वेष कहते हैं।

स्वरसवाही विदुषोऽपि तथारूढोऽभिनिवेशः ॥ ९ ॥

(जो मरने का भय हर एक प्राणी में) स्वभावतः बह रहा है और विद्वानों के लिये भी ऐसा ही प्रसिद्ध है (जैसा कि मूर्खों के लिये) वह अभिनिवेश क्लेश है।

ते प्रतिप्रसवहेयाः सूक्ष्माः ॥ १० ॥

वे पूर्वोक्त पाँच क्लेश जो क्रिया-योग से सूक्ष्म और प्रसंख्यान अग्नि से दग्ध-बीज-रूप होगये हैं, असम्प्रज्ञात-समाधि द्वारा अपने कारण में लीन करने योग्य हैं।

ध्यानहेयास्तद्वृत्तयः ॥ ११ ॥

क्लेशों की स्थूल वृत्तियें जो क्रियायोग से तनु करदी गई है, प्रसंख्यान संज्ञक ध्यान से त्यागने योग्य हैं। (जब तक कि वे सूक्ष्म होकर दग्ध-बीज के सदृश न होजावें।

क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः ॥ १२ ॥

क्लेश जिसकी जड़ है ऐसे कर्मों की वासना वर्त्तमान और और अगले जन्मों में भोगने योग्य है।

सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः ॥ १३ ॥

अविद्या आदि क्लेशों की जड़ के होते हुये उस (कर्माशय) का फल जाति, आयु और भोग होता है।

ते ह्लादपरितापफलाः पुण्यापुण्यहेतुत्वात् ॥ १४ ॥

वे (जन्म, आयु और भोग) सुख दुःख फल देनेवाले होते हैं क्योंकि उनके कारण पुण्य और पाप हैं।

परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः ॥ १५ ॥

क्योंकि (विषय-सुख के भोग काल में भी) परिणाम-दुःख, ताप-दुःख और संस्कार दुःख बना रहता है और गुणों के स्वभाव में भी विरोध है इसलिये विवेकी पुरुष के लिये सब कुछ (सुख भी जो विषय-जन्य है) दुःख ही है।

हेयं दुःखमानागतम् ॥ १६ ॥

आनेवाले दुःख हेय (त्यागने योग्य) हैं।

द्रष्टृदृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः ॥ १७ ॥

द्रष्टा और दृश्य का संयोग "हेय-हेतु" (दुख का कारण) है।

प्रकाशक्रियास्थितिशीलं भूतेन्द्रियात्मकं भोगापवर्गार्थं दृश्यम् ॥ १८ ॥

प्रकाश, क्रिया और स्थिति जिसका स्वभाव है भूत और इन्द्रिय जिसका स्वरूप है, भोग और अपवर्ग जिसका प्रयोजन है वह दृश्य है।

विशेषाविशेषलिङ्गमात्रालिङ्गानि गुणपर्वाणि ॥ १९ ॥

गुणों की चार अवस्थायें (परिणाम) है, विशेष, अविशेष, लिङ्ग मात्र और अलिङ्ग ।

द्रष्टा दृशिमात्रः शुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्यः ॥ २० ॥

द्रष्टा जो देखने की शक्ति मात्र है, निर्विकार होता हुआ भी चित्त की वृत्तियों के अनुसार देखने वाला है।

तदर्थं एव दृश्यस्यात्मा ॥ २१ ॥

उस पुरुष के लिये ही (यह सारा) दृश्य का स्वरूप है।

कृतार्थं प्रति नष्टमप्यनष्टं यदन्यसाधारणत्वात् ॥ २२ ॥

जिसका प्रयोजन सिद्ध होगया है उसके लिये यह दृश्य नष्ट हुआ भी नष्ट नहीं होता है क्योंकि वह दूसरे पुरुषों के साथ साझे की वस्तु है।

स्वस्वामिशक्तयोः स्वरूपोपलब्धि हेतुः संयोगः ॥ २३ ॥

स्व-शक्ति और स्वामी-शक्ति के स्वरूप को साक्षात करने का कारण सयोग है ।

तस्य हेतुरविद्या ॥ २४ ॥

इस अदर्शनरूपी सयोग का कारण अविद्या है।

तदभावात् संयोगाभावो हानं तद्दृशेः कैवल्यम् ॥ २५ ॥

उसके (अविद्या के) अभाव से (अदर्शनरूपी) सयोग का अभाव " हान " है वह चिति-शक्ति का कैवल्य है।

विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः ॥ २६ ॥

अविप्लव शुद्ध विवेक ख्याति हान का उपाय है।

तस्य सप्तधा प्रान्तभूमिः प्रज्ञाः ॥ २७ ॥

उस निर्मल विवेकख्यति वाले योगी की सात प्रकार की सब से ऊंची अवस्था वाली प्रज्ञा होती है।

योगाङ्गाऽनुष्टानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यतिः ॥ २८ ॥

योग के अंगों के अनुष्ठान से अशुद्धि के नाश होने पर ज्ञान का प्रकाश विवेकख्यति-पर्यन्त होजाता है।

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टा-
वङ्गानि ॥ २९ ॥

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा ध्यान समाधि (ये) आठ योग के अङ्ग हैं।

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहायमाः ॥ ३० ॥

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, यम हैं।

जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम् ॥ ३१ ॥

जाति देश काल और समय (संकेत "नियम विशेष") की हद से रहित सर्व भूमियों में पालन करने योग्य यम, महाव्रत कहलाते हैं।

शौचसन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ॥ ३२ ॥

शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय (और) ईश्वर प्रणिधान नियम हैं।

वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम् ॥ ३३ ॥

वितर्कों द्वारा यम और नियमों का बाध होने पर प्रतिपक्ष का चिन्तन करना चाहिये।

वितर्का हिंसादयः कृतकारितानुमोदिता लोभक्रोधमोहपूर्वका मृदुमध्याधिमात्रा दुःखाज्ञानानन्तफला इति प्रतिपक्षभावनम् ॥३४॥

यम, नियमों के विरोधी हिंसा आदि वितर्क कहलाते हैं। (वे तीन प्रकार के होते हैं) स्वयं किये हुये, दूसरों से कराये हुये, और अनुमोदन किये हुये। उनके कारण लोभ मोह और क्रोध होते हैं वे मृदु-मध्य और अधिमात्रा वाले होते हैं, दुःख और अज्ञानरूपी अपरिमित फलों को देने वाले हैं इस प्रकार प्रतिपक्ष की भावना करें।

अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः ॥ ३५ ॥

अहिंसा की दृढ़ स्थिति होजाने पर उस (अहिंसक योगी) के निकट सब प्राणियों का वैर छूट जाता है।

सत्यप्रतिष्ठायांक्रियाफलाश्रयत्वम् ॥ ३६ ॥

सत्य में दृढ़ स्थिति होजाने पर क्रियाफल का आश्रय बनती है।

अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानाम् ॥ ३७ ॥

अस्तेय की दृढ स्थिति होने पर सब रत्नों की प्राप्ति होती है।

ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्य लाभः ॥ ३८ ॥

ब्रह्मचर्य की दृढ़ स्थिति होने पर वीर्य का लाभ होता है।

अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्ता सम्बोधः ॥ ३९ ॥

अपरिग्रह की स्थिरता में जन्म के कैसेपन का साक्षात् होता है, अर्थात् इससे पूर्व जन्म क्या था, कैसा था, कहां था, यह जन्म किस प्रकार हुआ आगे कैसा होगा ?

शौचात् स्वाङ्गजुगुप्सा परैरसंसर्गः ॥ ४० ॥

शौच से अपने अङ्गों से घृणा होती है और दूसरों से संसर्ग का अभाव होता है।

सत्त्वशुद्धि सौमनस्यैकाग्र्येन्द्रियजयात्मदर्शनयोग्यत्वानि च ॥४१॥

चित्त की शुद्धि, मन की स्वच्छता, एकाग्रता, इन्द्रियों का जीतना और आत्म दर्शन की योग्यता आभ्यन्तर शौच की सिद्धि से प्राप्त होती है ।

सन्तोषादनुत्तमसुखलाभः ॥ ४२ ॥

सन्तोष से अनुत्तम सुख का लाभ प्राप्त होता है (उत्तम से उत्तम सुख, अर्थात् जिससे बढकर और कोई सुख नहीं)

कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः ॥ ४३ ॥

तप से अशुद्धि के क्षय होने से शरीर और इन्द्रियों की सिद्धि होती है ।

स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः ॥ ४४ ॥

स्वाध्याय से इष्ट देवता का साक्षात होता है ।

समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात् ॥ ४५ ॥

समाधि की सिद्धि ईश्वर-प्रणिधान से होती है ।

स्थिरसुखमासनम् ॥ ४६ ॥

जो स्थिर और सुखदाई हो वह आसान है ।

प्रयत्नशैथिल्यानन्त्यसमापत्तिभ्याम् ॥ ४७ ॥

(आसन) प्रयत्न की शिथिलता और अनन्त्य (अपरिच्छिन्न आकाशादि में जो अनन्तता है उसमें) में समापत्तिद्वारा सिद्ध होता है ।

ततो द्वन्द्वानभिघातः ॥ ४८ ॥

आसन की सिद्धि से द्वन्द्वों की चोट नहीं लगती ।

तस्मिन् सतिश्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः ॥ ४९ ॥

आसन के स्थिर होने पर श्वास-प्रश्वास की गति का रोकना प्राणायाम है।

बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः ॥ ५० ॥

(यह प्राणायाम) बाह्य-वृत्ति, आभ्यान्तर-वृत्ति और स्तम्भ-वृत्ति (तीन प्रकार का होता है) देश, काल और सख्या से देखा हुआ लम्बा और हल्का होता है।

बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः ॥ ५१ ॥

बाहर अन्दर के विषय को फेंकनेवाला अर्थात् आलोचन करने वाला चौथा प्राणायाम है।

ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् ॥ ५२ ॥

उससे प्रकाश का आवरण (विवेक-ज्ञान का पर्दा) क्षीण होजाता है।

धारणासु च योग्यता मनसः ॥ ५३ ॥

और धारणाओं में मन की योग्यता होती है।

स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकारइवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः ॥ ५४ ॥

इन्द्रियों का अपने विषयों के साथ सम्बन्ध न होने पर चित्त के स्वरूप का अनुकरण (नक़ल) जैसा करना प्रत्याहार है।

ततः परमावश्यतेन्द्रियाणाम् ॥ ५५ ॥

उस प्रत्याहार से इन्द्रियों का उत्कृष्ट वशीकार होता है।

* इति श्री पातञ्जले योग शास्त्रे साधन निर्देशो नाम द्वितीयः पादः *

* अथ विभूति पादः *

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा ॥ १ ॥

चित्त का वृत्ति मात्र से किसी स्थान विशेष में (जैसे नाभि, हृदयकमल, नासिका अग्रभाग, भ्रकुटी, ब्रह्मरंध्र आदि आध्यात्मिक देश अथवा चन्द्र, ध्रुव आदि बाह्य देश) बांधना धारणा कहलाता है।

तत्र प्रत्ययैक तानता ध्यानम् ॥ २ ॥

उसमें वृत्तिका एकसा (घटोऽययं घटोऽयम् आदि) बना रहना ध्यान है।

तदेवार्थमात्र निर्भासं स्वरूप शून्यमिव समाधिः ॥ ३ ॥

वह ध्यान ही समाधि कहलाता है जब उसमें केवल ध्येय अर्थ मात्र से भासता है और उसका (ध्यान का) स्वरूप शून्य जैसा हो जाता है।

त्रयमेकत्र संयमः ॥ ४ ॥

तीनों (धारणा, ध्यान और समाधि) का एक विषय में होना सयम कहलाता है।

तज्जयात्प्रज्ञा लोकः ॥ ५ ॥

उस (सयम) के जय से समाधि प्रज्ञा का प्रकाश होता है।

तस्य भूमिषु विनियोगः ॥ ६ ॥

उस सयम का भूमियों में विनियोग करना (लगाना) चाहिये।

त्रयमन्तरङ्गं पूर्वेभ्यः ॥ ७ ॥

पहलों (यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार) की

अपेक्षा से तीनों (धारणा, ध्यान और समाधि) (सम्प्रज्ञात समाधि के) अन्तरङ्ग हैं।

तदपि बहिरङ्गं निर्बीजस्य ॥ ८ ॥

वह (धारणा, ध्यान, समाधि) भी असम्प्रज्ञात समाधि का बाहर का अग है।

व्युत्थान निरोध संस्कारयोरभिभव प्रादुर्भावौ निरोधक्षण चिन्तान्वयो निरोध परिणामः ॥ ९ ॥

व्युत्थान के संस्कार का दबना और निरोध के संस्कार का प्रकट होना यह जो निरोध काल में होने वाला चित्त का दोनों संस्कारों में अनुगत होना है वह निरोध परिणाम कहा जाता है।

तस्य प्रशान्तवाहिता संस्कारात् ॥ १० ॥

निरोध सस्कार से चित्त की शान्त प्रवाह वाली गति होती है।

सर्वार्थतैकाग्रतयोः क्षयोदयौ चित्तस्य समाधि परिणामः ॥११॥

चित्त (धर्मी) के सर्वार्थता और एकाग्रता रूप धर्मों का (क्रम से) नाश होना और प्रकट होना चित्त का समाधि अवस्था में परिणाम है।

ततः पुनः शान्तोदितौ तुल्यप्रत्ययौ चित्तस्यैकाग्रता परिणामः ॥१२॥

तब फिर समान बृत्तियों का शान्त (दबना) और उदय होना चित्त का एकाग्रता परिणाम है।

एतेन भूतेन्द्रियेषु धर्मलक्षणावस्था परिणामा व्याख्याताः ॥१३॥

चित्त के परिणाम से ही भूतों और इन्द्रियों में धर्म लक्षण और अवस्था परिणाम व्याख्या किये गये जानने चाहिये।

शान्तोदिताव्यपदेश्य धर्मानुपाती धर्मी ॥ १४ ॥

अतीत, वर्तमान और भविष्यत् धर्मों में अनुगत धर्मी है।

क्रमान्यत्वं परिणामान्यत्वे हेतुः ॥ १५ ॥

क्रमों का भेद परिणाम के भेद में हेतु है।

परिणामत्रयसंयमादतीतानागत ज्ञानम् ॥ १६ ॥

तीनों परिणामों में संयम करने से भूत और भविष्यत का ज्ञान होता है।

शब्दार्थ प्रत्ययानामितरेतराध्यासात् संकरस्तत्प्रविभाग संयमात्सर्वभूतरुत ज्ञानम् ॥ १७ ॥

शब्द, अर्थ और ज्ञान के परस्पर के अभ्यास से अभेद भासना होता है। उनके विभाग में संयम करने से सब प्राणियों के शब्द का ज्ञान होता है।

संस्कार साक्षात्करणात् पूर्व जाति ज्ञानम् ॥ १८ ॥

संस्कार के साक्षात् करने से पूर्व जन्म का ज्ञान होता है।

प्रत्ययस्य परचित्तज्ञानम् ॥ १९ ॥

दूसरे के चित्त के साक्षात् करने से दूसरे के चित्त का ज्ञान होता है।

न च तत्सालम्बनं तस्याविषयी भूतत्वात् ॥ २० ॥

पर वह (दूसरे का चित्त) अपने विषय सहित साक्षात् नहीं होता क्योंकि वह (विषय सहित चित्त) उसका (संयम का) विषय नहीं है।

कायरूप संयमात् तद्ग्राह्यशक्ति स्तम्भे चक्षुः प्रकाशासम्प्रयोगे ऽन्तर्धानम् ॥ २१ ॥

अपनें शरीर के रूप में संयम करने से रूप की ग्राह्य शक्ति रुक जाती है इससे दूसरे के आंखों के प्रकाश से योगी के शरीर का संनिकर्ष न होने के कारण (योगी के शरीर का) अन्तर्धान (छिप जाना) होजाता है।

सोपक्रमं निरुपक्रमं च कर्म तत्संयमादपरान्त ज्ञानमरिष्टेभ्यो वा ॥ २२ ॥

कर्म सोपक्रम (तीव्र वेग वाला, अथवा आरम्भ सहित) और निरुपक्रम (मन्द वेग वाला अथवा आरम्भ रहित) दो प्रकार का होता है उसमें संयम करने से मृत्यु का ज्ञान होता है अथवा अरिष्टों (उल्टे चिन्हों) से मृत्यु का ज्ञान होता है।

मैत्र्यादिषु बलानि ॥ २३ ॥

मैत्री आदि (१।३३) में सयम करने से मैत्री आदि वल प्राप्त होते हैं।

बलेषु हस्तिबलादीनि ॥ २४ ॥

हस्ती आदि के बलों में सयम करने से हस्ती आदि के वल प्राप्त होते हैं।

प्रवृत्यालोकन्यासात्सूक्ष्म व्यवहितविप्रकृष्टज्ञानम् ॥ २५ ॥

प्रवृत्ति (मन की ज्योतिष्मती प्रवृत्ति ।१। ३६) के प्रकाश डालने से सूक्ष्म (इन्द्रियातीत) व्यवहित (आड़ में रहने वाली) और विप्रकृष्ट [दूर की] वस्तु का ज्ञान होता है।

भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात् ॥ २६ ॥

सूर्य में सयम से भुवन [सातो लोकों में जो भुवन हैं] का ज्ञान होता है।

चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम् ॥ २७ ॥

चन्द्रमा में संयम करने से ताराओं के व्यूह [नक्षत्रों के स्थान विशेष] का ज्ञान होता है।

ध्रुवे तद्गतिज्ञानम् ॥ २८ ॥

ध्रुव में संयम करने से ताराओं की गति का ज्ञान होता है।

नाभिचक्रे कायव्यूहज्ञानम् ॥ २९ ॥

नाभिचक्र में संयम करने से शरीर के व्यूह का ज्ञान होता है।

कण्ठकूपे क्षुत्पिपासानिवृत्तिः ॥ ३० ॥

कण्ठ कूप में संयम करने से क्षुधा और प्यास [भूक प्यास] की निवृत्ति होती है।

कूर्मनाड्यां स्थैर्यम् ॥ ३१ ॥

कूर्मनाड़ी में संयम करने से स्थिरता होती है।

मूर्धज्योतिषि सिद्ध दर्शनम् ॥ ३२ ॥

मूर्धा की ज्योति में संयम करने से सिद्धो का दर्शन होता है।

प्रातिभाद्वा सर्वम् ॥ ३३ ॥

अथवा प्रातिभज्ञान से योगी सब कुछ जान लेता है।

हृदये चित्तसंवित् ॥ ३४ ॥

हृदय में संयम करने से चित्त का ज्ञान होता है।

सत्त्वपुरुषयोरत्यन्तासंकीर्णयोः प्रत्ययाविशेषो भोगः परार्थान्य स्वार्थ संयमात् पुरुषज्ञानम् ॥ ३५ ॥

चित्त और पुरुष जो परस्पर अत्यन्त भिन्न हैं इन दोनों की प्रतीतियों का अभेद भोग है। उनमें से परार्थ प्रतीति से भिन्न जो स्वार्थ प्रतीति है उसमें सयम करने से पुरुष का ज्ञान होता है अर्थात्

पुरुष विषयक प्रज्ञा उत्पन्न होती है।

ततः प्रातिभ श्रावण वेदनादर्शास्वादवार्ता जायन्ते ॥ ३६ ॥

उस स्वार्थ संयम के अभ्यास से प्रातिभ, श्रावण, वेदना आदर्श आस्वाद और वार्ता ज्ञान उत्पन्न होता है।

प्रातिभ—मन में सूक्ष्म (अतीन्द्रिय) व्यवहित (छिपी हुई) विप्रकृष्ट (दूरस्थ) अतीत और अनागत वस्तुओं की जानने की योग्यता।

श्रावण—श्रोत्रेन्द्रिय की दिव्य और दूर के शब्द सुनने की योग्यता।

वेदना—त्वचा इन्द्रिय की दिव्य स्पर्श जानने की योग्यता।

आदर्श—नेत्रेन्द्रिय की दिव्य रूप देखने की योग्यता।

आस्वाद—रसनेन्द्रिय की दिव्य रस जानने की योग्यता।

वार्ता—घ्राणेन्द्रिय की दिव्य गन्ध सूंघने की योग्यता।

ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः ॥ ३७ ॥

वे उपर्युक्त ६ सिद्धियां समाधि में विघ्न हैं व्युत्थान में सिद्धियां हैं।

बन्ध कारण शैथिल्यात् प्रचारसंवेदनाच्च चित्तय परशरीरावेशः ॥ ३८ ॥

बन्ध के कारण के शिथिल करने से और घूमने के मार्ग के जाननेसे चित्त (सूक्ष्म शरीर) का दूसरे के शरीर में आवेश होता है।

उदान जयाज्जल पङ्ककण्टकादिष्वसंग उत्क्रान्तिश्च ॥ ३९ ॥

संयम द्वारा उदान के जीतने से जल, कीचड़, कांटों आदि में असंग रहना और ऊर्ध्व गति होती है।

समान जयाज्ज्वलनम् ॥ ४० ॥

(संयम द्वारा) समान के जीतने से योगी का दीप्तिमान होना होता है।

श्रोत्राकाशयोः सम्बन्ध संयमाद्दिव्यं श्रोत्रम् ॥ ४१ ॥

श्रोत्र और आकाश के सम्बन्ध में संयम करने से दिव्य श्रोत्र होता है।

कायाकाशयोः सम्बन्धसंयमाल्लघुतूल समापत्तेश्चाकाश गमनम् ॥ ४२ ॥

शरीर और आकाश के सम्बन्ध में संयम करने से और हलके रुई आदि में समापत्ति करने से आकाश गमन सिद्धि प्राप्त होती है।

बहिरकल्पिता वृत्तिर्महाविदेहा ततः प्रकाशावरणक्षयः ॥ ४३ ॥

शरीर से बाहर कल्पना न की हुई वृत्ति महाविदेहा है उससे प्रकाश का आवरण का नाश होता है।

स्थूलस्वरूप सूक्ष्मान्वयार्थवत्त्व संयमाद्भूतजयः ॥ ४४ ॥

पांचों भूतों के स्थूल, स्वरूप, सूक्ष्म अन्वय और अर्थवत्व में सयम करन से भूतों का जय होता है।

(१) स्थूल–पांचों भूतों का अपना २ विशिष्ट आकार (२) स्वरूप–पांचों भूतों का अपना २ नियत धर्म जिनसे वे जाने जाते हैं (३) सूक्ष्म–सूक्ष्म भूतों के कारण पांच तन्मात्रायें (४) अन्वय–तीनों गुण जो अपने प्रकाश क्रिया और स्थित धर्म से पांचों भूतों में अन्वयी भाव से रहते हैं (५) अर्थवत्त्व–पुरुष का प्रयोजन भोग और अपवर्ग जिसके लिये पांचों भूत कार्य में लगे हुये हैं।

ततोऽणिमादिप्रादुर्भावः कायसंपत्तद्धर्मानभिघातश्च ॥ ४५ ॥

उस भूत जय से अणिमा आदि आठ सिद्धियों का प्रादुर्भाव और काय-सम्पत होती है और उन पांचों भूतों के धर्मों से रुकावट नहीं होती।

रूपलावण्य बलवज्र संहननत्वानि कायसम्पत् ॥ ४६ ॥

रूप, लावण्य, बल, बज्र की-सी बनावट, काय सम्पत (शरीर की सम्पदा) कहलाती है।

ग्रहणस्वरूपास्मितान्वयार्थवत्त्व संयमादिन्द्रियजयः ॥ ४७ ॥

(इन्द्रियों के पांचो रूप) ग्रहण, स्वरूप, अस्मिता, अन्वय और अर्थवत्त्व में संयम करने से इन्द्रिय जय होता है।

(१) ग्रहण–इन्द्रियों की विषयाभिमुखी वृत्ति (२) स्वरूप–सामान्य रूप से इन्द्रियों का प्रकाशिकत्त्व (३) अस्मिता–इन्द्रियों का कारण अहंकार (४) अन्वय–तीनों गुण जो प्रकाश क्रिया और स्थिति धर्म से इन्द्रियों में अन्वयी भाव से अनुगत हैं (५) अर्थवत्त्व–इनका प्रयोजन पुरुष का भोग और अपवर्ग।

ततो मनोजवित्वं बिकरणभावः प्रधानजयश्च ॥ ४८ ॥

इन्द्रिय जय से मनोजवित्व, बिकरण भाव और प्रधान का जय होता है।

(१) मनोजवित्व–मन के समान शरीर का वेगवान होना (२) विकरण भाव–इन्द्रियों में दूर के अर्थों के जानने की योग्यता (३) प्रधान जय–प्रकृति के सब विकारों का वशीकार।

सत्वपुरुषान्यताख्यातिमात्रस्य सर्वभावाधिष्ठातृत्वं सर्वज्ञातृत्वं च ॥ ४९ ॥

चित्त और पुरुष के भेद जानने वाले को सारे भावों का मालिक होना और सर्वज्ञ होना प्राप्त होता है।

तद्वैराग्यादपि दोषबीजक्षये कैवल्यम् ॥ ५० ॥

विवेक ख्याति से भी वैराग्य होने पर दोषों के बीज के क्षय होने पर कैवल्य होता है।

स्थान्युपनिमन्त्रणे सङ्गस्मयाकरणं पुनरनिष्ट प्रसङ्गात् ॥ ५१ ॥

स्थान वालों के आदर भाव करने पर लगाव व घमंड नहीं करना चाहिये। क्योंकि (इसमें) फिर अनिष्ट के प्रसंग का भय है।

क्षणतत्क्रमयोः संयमाद्विवेकजं ज्ञानम् ॥ ५२ ॥

क्षण और उसके क्रमों मे सयम करने से विवेकज ज्ञान उत्पन्न होता है।

जातिलक्षणदेशैरन्यतानवच्छेदात् तुल्ययोस्ततः प्रतिपत्तिः ॥५३॥

एक दूसरे से जाति, लक्षण, देश से भेद का निश्चय न होने से दो तुल्य वस्तुओं का विवेकज ज्ञान से निश्चय होता है।

तारकं सर्वविषयं सर्वथा विषयमक्रमं चेति विवेकजं ज्ञानम्॥५४॥

बिना निमित्त के अपनी प्रभा से स्वयं उत्पन्न होने वाला, सब को विषय करने वाला, सब प्रकार से विषय करने वाला बिना क्रम के एक साथ होने वाले ज्ञान को विवेकज ज्ञान कहते हैं।

सत्वपुरुषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यमिति ॥ ५५ ॥

चित्त और पुरुष की समान शुद्धि होने पर कैवल्य होता है।

* इति श्री पातञ्जले योग शास्त्रे विभूति निर्देशो नाम तृतीयः पादः *

अथ कैवल्य पादः।

जन्मौषधि मन्त्रतपः समाधिजाः सिद्धयः ॥ १ ॥

जन्म, औषधि, मन्त्र, तप और समाधि से उत्पन्न होने वाली

सिद्धियें हैं। (इस प्रकार सिद्धियों के भेद से सिद्ध चित्तों के पांच भेद जानने चाहिये)

जात्यन्तरपरिणामः प्रकृत्यापूरात् ॥ २ ॥

एक जाति से दूसरी जाति में बदल जाना प्रकृतियों (उपादान करणों) के भरने से होता है।

निमित्तमप्रयोजकं प्रकृतीनां वरणभेदस्तु ततः क्षेत्रिकवत् ॥ ३ ॥

धर्मादि निमित्त प्रकृतियों का प्रेरक नहीं होता है किन्तु उससे किसान के सदृश रुकावट दूर होती है।

निर्माणचित्तान्यस्मितामात्रात् ॥ ४ ॥

अस्मिता मात्र से निर्माण चित्त होते है।

प्रवृत्तिभेदे प्रयोजकं चित्तमेकमनेकेषाम् ॥ ५ ॥

प्रवृति के भेदोंमें एक चित्त अनेक चित्तोंका प्रेरने वाला होताहै।

तत्र ध्यानजमनाशयम् ॥ ६ ॥

उन पाच प्रकार के जन्म औषध आदि से उत्पन्न हुये पांचों निर्माण सिद्ध चित्तों में से समाधि से उत्पन्न होने वाला चित्त बासनाओं से रहित होता है।

कर्माशुक्लाकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम् ॥ ७ ॥

योगी का कर्म अशुक्ल अकृष्ण (न शुक्ल न कृष्ण अर्थात् निष्काम) होता है दूसरों (सकामि पुरुषों) का तीन प्रकार का (पाप, पुण्य, और पाप पुण्य मिश्रित) होता है।

ततस्तद्विपाकानुगुणानामेवाभिव्यक्तिर्वासनानाम् ॥ ८ ॥

उन (तीन प्रकार के सकाम कर्मों) से उनके फल के अनुकूल ही वासनाओं की अभिव्यक्ति (प्रादुर्भाव) होती है।

जातिदेशकालव्यवहितानामप्यानन्तर्यं स्मृतिसंस्कारयो-रेकरूपत्वात् ॥ ९ ॥

जाति देश और काल कृत व्यवधान वाली वासनाओं का भी व्यवधान नहीं होता क्योंकि स्मृति और संस्कार एक रूप (समान विषयक) होते हैं।

तासामनादित्वं चाशिषो नित्यत्वात् ॥ १० ॥

उन वासनाओं को आशिष (अपने कल्याण की इच्छा) के नित्य होने से अनादित्य (अनादि होना) भी हैं।

हेतुफलाश्रयालम्बनैः संगृहीतत्वादेषामभावे तदभावः ॥ ११ ॥

हेतुफल आश्रय और आलम्बनसे वासनाओंके संगृहीत(सहारे) होने से इनके (हेतु फल आश्रय और आलम्बन के) अभाव में उन (वासनाओं) का अभाव होता है।

अतीतानागतं स्वरूपतोऽस्त्यध्वभेदाद्धर्माणाम् ॥ १२ ॥

अतीत और अनागत स्वरूप से रहते हैं क्योंकि धर्मों का काल से भेद होता है।

ते व्यक्तसूक्ष्मा गुणात्मानः ॥ १३ ॥

वे (धर्म) प्रकट और सूक्ष्म गुण स्वरूप हैं।

परिणामैकत्वाद्वस्तुतत्त्वम् ॥ १४ ॥

परिणाम के एक होने से वस्तु की एकता होती है।

वस्तुसाम्ये चित्तभेदात्तयोर्विभक्तः पन्थाः ॥ १५ ॥

वस्तु के एक होने पर (भी) चित्त के भेद से उन दोनों (चित्त और वस्तु) का अलग २ मार्ग है। अर्थात् वे दोनों अलग रहैं।

न चैकचित्ततन्त्रं वस्तु तदप्रमाणकंतदा किं स्यात् ॥ १६ ॥

(ग्राह्य) वस्तु एक चित्त के आधीन नहीं है क्योंकि वह (वस्तु) बिना प्रमाण (चित्त) के उस समय क्या होगी। (अर्थात् कुछ भी नहीं होगी)

तदुपरागापेक्षित्वाच्चित्तस्य वस्तु ज्ञाताज्ञातम् ॥ १७ ॥

चित्त को वस्तु के जानने में उसके उपराग (विषय का चित्त में प्रतिविम्ब पड़ना) की उपेक्षा होती है इसलिये उसको (चित्त को) वस्तु (उपराग में) ज्ञात और (उपराग न होने में) अज्ञात होती है।

सदा ज्ञाताश्चित्तवृत्तयस्तत्प्रभोः पुरुषस्यापरिणामित्वात् ॥१८॥

चित्त का स्वामी पुरुष परिणामी नहीं है इसलिये चित्त की वृत्तियें उसे सदा ज्ञात रहती हैं।

न तत्स्वाभासं दृश्यत्वात् ॥ १९ ॥

चित्त स्वप्रकाश नहीं है क्योंकि वह दृश्य है।

एक समये चोभयानवधारणम् ॥ २० ॥

और एक समय में दोनों (विषय और चित्त) का ज्ञान नहीं हो सकता।

चित्तान्तरदृश्ये बुद्धिबुद्धेरतिप्रसङ्गः स्मृतिसंकरश्च ॥ २१ ॥

यदि पहले चित्त को दूसरे चित्त का दृश्य माना जावे तो चित्त (ज्ञान) के चित्त (ज्ञान) का अनवस्था दोष होगा (अर्थात् एक ज्ञान भी कभी समाप्त न होगा) और स्मृतियों का संकर हो जावेगा। (अर्थात् यह पता न चल सकेगा कि किसकी कौनसी स्मृति है।

चितेरप्रति संक्रमायास्तदाकारापत्तौ स्वबुद्धिसंवेदनम् ॥ २२ ॥

पुरुष को जो क्रिया अथवा परिणाम रहित है स्वप्रतिविम्बित

चित्त के आकार की तरह आकार की प्राप्ति होने पर अपने विषय भूत चित्त का ज्ञान होता है।

द्रष्टृदृश्योपरक्तं चितं सर्वार्थम् ॥ २३ ॥

द्रष्टा और दृश्य से रंगा हुआ चित्त सोर अर्थों वाला (आकार वाला) होता है

तदसंख्येयवासनाभिश्चित्रमपि परार्थं संहत्यकारित्वात् ॥ २४ ॥

चित्त अनगिनित वासनाओं से चित्रित हुआ भी परार्थ है क्योंकि वह संहत्यकारी है। (जो वस्तु कई चीजों से मिलकर काम की बनती है वह सहत्यकारी कहलाती है जैसे मकान शय्या आदि। सहंत्यकारी वस्तु अपने लिये नहीं होती बल्कि किसी दूसरे के लिये। चित्त भी सत्त्व रजस् और तमस गुणों के अंगागी भाव के मेल से सत्त्व प्रधान बना है। इसलिये वह संहत्यकारी है और किसी दूसरे के लिये होना चाहिये। सो पुरुष के भोग अपवर्ग के लिये ही इसकी प्रवृत्ति है)।

विशेषदर्शिन आत्मभावभावनाविनिवृत्तिः ॥ २५ ॥

बिवेक ख्याति द्वारा पुरुष और चित्त में भेद के देखने वाले की आत्म भाव की भावना (मैं कौन हूं, क्या हूं इत्यादि) निवृत्त हो जाती है।

तदा विवेक निम्नं कैवल्यप्राग्भारं चित्तम् ॥ २६ ॥

विशेष दर्शन के उदय होने पर विशेष दर्शी का चित्त विवेक मार्ग संचारी होकर कैवल्य के अभिमुख होता है।

तच्छिद्रेषुप्रत्ययान्तराणि संस्कारेभ्यः ॥ २७ ॥

इस विवेक ज्ञान के बीच २ में अन्य व्युत्थान की वृत्तियें (भी) (पूर्वले व्युत्थान के) संस्कारों से उदय होती रहती हैं।

हानमेषां क्लेशवदुक्तम् ॥ २८ ॥

उन (व्युत्थान के संस्कारों) की निवृत्ति क्लेशों की निवृत्ति (२ । १० । ११) के तुल्य कही गई जानना चाहिये ।

प्रसंख्यानेऽप्यकुसीदस्यसर्वथा विवेकख्यातेर्धर्ममेघः समाधिः ॥२९॥

जो योगी प्रसख्यान ज्ञान से भी विरक्त है उसको निरन्तर विवेक ख्याति के उदय होने से धर्म मेघ समाधि होती है ।

ततः क्लेशकर्मनिवृत्तिः ॥ ३० ॥

उस (धर्म मेघ समाधि) से क्लेश (अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, और अभिनिवेष) और कर्मों (सकाम कर्म अर्थात् शुभ, अशुभ और शुभाशुभ मिश्रित) की निवृति होती है ।

तदा सर्वावरणमलापेतस्य ज्ञानस्यानन्त्याज्ज्ञेयमल्पम् ॥ ३१ ॥

तब सब क्लेश कर्मों के क्षय काल में सर्व आवरण रूप मलों से रहित होकर चित्त रूप प्रकाश के अनन्त होने से ज्ञेय पदार्थ अल्प होजाता है ।

ततः कृतार्थानां परिणामक्रमसमाप्तिर्गुणानाम् ॥ ३२ ॥

तब कृतार्थ हुये गुणों के (पुरुष का भोग और अपवर्ग प्रयोजन सिद्ध होजाने पर) परिणाम के क्रम (उस पुरुष के प्रति शरीर इन्द्रिय आदि के आरम्भ) की समाप्ति होजाती है ।

क्षणप्रतियोगी परिणामापरान्तनिर्ग्राह्यः क्रमः ॥ ३३ ॥

प्रतिक्षण होने वाली परिणाम की समाप्ति पर जानी जाने वाली (गुणों की अवस्था विशेष का नाम) क्रम है ।

पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति ॥ ३४ ॥

पुरुषार्थ से शून्य हुये गुणों का अपने कारण में लीन होजाना कैवल्य है अथवा चिति शक्ति का अपने स्वरूप में अवस्थित होजाना कैवल्य है।

● इति श्रीं पातञ्जले योग शास्त्रे कैवल्य निर्देशो नामचतुर्थः पादः ●



● ॐ आनन्दम् ●

ॐ आनन्दम्	ॐ आनन्दम्	ॐ आनन्दम्
	ॐ	
ॐ आनन्दम्	ॐ आनन्दम्	ॐ आनन्दम्
	ॐ	
ॐ आनन्दम्	ॐ आनन्दम्	ॐ आनन्दम्
	ॐ	
ॐ आनन्दम्	ॐ आनन्दम्	ॐ आनन्दम
	ॐ	

• निर्वाण षटक •

मनोबुद्ध्यहंकार चित्तानि नाहं,
न च श्रोत्रजिह्वे न च घ्राण नेत्रे ।
न च व्योम भूमिर्न तेजो न वायु-
श्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥ १ ॥
न च प्राण संज्ञो न वै पञ्चवायु-
र्न वा सप्तधातुर्न वा पञ्च कोशः ।
न वाक्पाणिपादं न चोपस्थ पायु-
श्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥ २ ॥
न मे द्वेष रागौ न मे लोभ मोहौ
मदो नैव मे नैव मात्सर्यभावः ।
न धर्मो न चार्थो न कामो न मोक्ष-
श्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥ ३ ॥
न पुण्यं न पापं न सौख्यं न दुःखम्
न मंत्रो न तीर्थं न वेदा न यज्ञाः ।
अहं भोजनं नैव भोज्यं न भोक्ता
चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥ ४ ॥
न मे मृत्युः शंका न मे जाति भेदः
पिता नैव मे नैव माता च जन्म ।
न बन्धुर्न मित्रं गुरुर्नैव शिष्य-
श्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ।५।

अहं निर्विकल्पी निराकार रूपी
विभुत्वाच्च सर्वत्र सर्वेन्द्रियाणाम् ।
न चासंगतं नैव मुक्तिर्न मे च-
श्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥ ६ ॥

अर्थ—मैं मन, बुद्धि, अहङ्कार और चित्त नहीं हूँ, कर्ण और जिह्वा नहीं हूँ, नासिका और नेत्र नहीं हूं, आकाश और पृथ्वी नहीं हूं, तेज नहीं हूं, वायु नहीं हूं, (परन्तु) चिदानन्द-रूप मैं शिव हूँ, मैं शिव हूं ॥ १ ॥ मैं प्राणवर्ग नहीं हूं, में पञ्चवायु नहीं हूँ, धातु नहीं हूं, पाँच कोश नहीं हूं, वाक, हाथ-पैर नहीं हूँ, और जननेन्द्रिय नहीं हूँ, (परन्तु) मैं चिदानन्द रूप शिव हूं, मैं शिव हूं ॥ २ ॥ मेरे द्वेष और राग नहीं है लोभ और मोह नहीं है, मद नहीं है, मत्सर का भाव नहीं है, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष भी नहीं हूँ । मैं चिदानन्द स्वरूप शिव हूं, मैं शिव हूँ ॥ ३ ॥ मैं पुण्य रूप नहीं हूं, पाप रूप नहीं हूं, सुख रूप नहीं हूँ, दुःख रूप नहीं हूँ, तीर्थ रूप नहीं हूँ, वेद रूप नहीं हूँ, यज्ञ रूप नहीं हूँ, मैं भोजन नहीं हूँ, भोज्य नहीं हूं, और भोक्ता भी नहीं हूं, मैं तो चिदानन्द स्वरूप शिव हूं, मैं शिव हूँ ॥ ४ ॥ मुझे मृत्यु की शंका नहीं है, मुझमें जाति का भेद नहीं है, मेरा पिता नहीं है, माता नहीं है, जन्म नहीं है, न मेरा कोई बन्धु है न मित्र है, न गुरु है और न शिष्य है, में चिदानन्द स्वरूप शिव हूं, मैं शिव हूं ॥ ५ ॥ निर्विकल्प, निराकार-रूप विभु हूँ और सर्व स्थान पर और सर्वन्द्रियों में व्यापक होरहा हूं, मुझमें सदा समता है, मेरी मुक्ति नहीं है, मुझे बन्धन नहीं है, मैं तो चिदानन्द स्वरूप शिव हूँ, मैं शिव हूँ । ॥ ६ ॥

—: विशेष सूचना :—

पातञ्जल योग प्रदीप तथा षडदर्शन समन्वय के पिछले बर्थ मास मार्च सन् ४२ तक होने वाले ग्राहकों की सेवा में श्रीमान् रायसाहब डाक्टर श्यामस्वरूप सत्यव्रत, एल० एम० एस० बरेली की ओर से—

"योगसार" भेंट रूप

श्रीमान् पूज्य नारायण स्वामी जी महाराज की सम्मति

सार्वदेशिक-आर्य-प्रतिनिधि सभा श्रद्धानन्द बाज़ार, बलिदान भवन

देहली १६-७-४१.

*** योग दर्शन ***

श्री स्वामी ओमानन्द जी योगदर्शन की टीका लिख रहे हैं और उसे अंकों में निकाल रहे हैं। कुछ-एक अंक मैंने देखे हैं, उनसे प्रकट होता है कि टीका सरल और सुबोध है और सूत्रों के आशय को खोलकर प्रकट किया गया है। यदि टीका पूरी होगई, जिसकी आशा करनी चाहिये, तो योगदर्शन साहित्य में एक मूल्यवान वृद्धि होजावेगी। (ह०) श्री नारायणस्वामी जी



* साहित्य संदेश आगरा की सम्मति *

पातञ्जल योग प्रदीप-ग्रन्थकार स्वामी श्री ओमानन्द, मूल्य ५०० पृष्ठ की पुस्तक का ५) यह पुस्तक खण्डों में निकल रही है और अभी इसके ६ खण्ड आचुके हैं। पुस्तक में षडदर्शन समन्वय नाम की एक विस्तृत भूमिका है जिससे योग शास्त्र के समझने केलिए आवश्यक दार्शनिक जांनकारी प्राप्त होजाती है। योग-दर्शन के सूत्रों की विस्तृत व्याख्या की गई है जिसमें अन्वय के साथ शब्दार्थ भी दिया गया हैं। अन्य शास्त्रों के प्रमाण देकर सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण किया गया है। और उनकी सगति बिठलाई गई है। पुस्तक संग्रहणीय हैं हिन्दी में ऐसी टीकाओं की आवश्यकता है।

गुलाबराय (एम० ए० सम्पादक)

* एक सम्मति *

मैंने श्री स्वामी ओमानन्द जी कृत पातंजल योग प्रदीप (जो छप रहा है) की हस्त-लिखित पुस्तक को पढ़ा। योग विषय पर ऐसा पूर्ण और विस्तृत ग्रन्थ अभी तक देखने में नहीं आया है। योग की ओर जनता की रुचि बढ़ती जाती है, इसलिये ऐसे ग्रन्थ की आवश्यकता थी। इसमें योग सम्बन्धी सब ही बातों को ऐसी सरल रीति से बतलाने का यत्न किया गया है कि जिससे साधारण लोग भी उनको समझ सकें। साथ ही दार्शनिक बातों पर गवेषणा पूर्वक व्यास-भाष्य और भोज-वृत्ति आदि के आधार पर विचार किया है आशा है कि जनता पुस्तक से लाभ उठावेगी।

१६-१-४१

गंगाप्रसाद एम० ए०
(रायबहादुर-रिटायर्ड चीफ़ जस्टिस टेहरी गढ़वाल)
वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर